अध्याय 4: औद्योगीकरण का युग

आधुनिक विश्व को तकनीकी बदलावों व आविष्कारों, मशीनों व कारखानों, रेलवे और वाष्पपोतों की दुनिया के रूप में दर्शाया जाता है। इसमें औद्योगीकरण विकास की कहानी को आगे बढ़ाता है।

औद्योगिक क्रांति से पहले

इंग्लैंड और यूरोप में फ़ैक्ट्रियों की स्थापना से भी पहले अंतर्राष्ट्रीय बाज़ार के लिए बड़े पैमाने पर औद्योगिक उत्पादन होने लगा था। बहुत सारे इतिहासकार इस चरण को आदि-औद्योगीकरण का नाम देते हैं।

➡ 17वीं और 18वीं सदी में विश्व व्यापार के विस्तार और दुनिया के विभिन्न भागों में उपनिवेशों की स्थापना के कारण चीज़ों की माँग को पूरा करने के लिए यूरोपीय शहरों के सौदागर गाँव के किसानों और कारीगरों को पैसा देकर अंतर्राष्ट्रीय बाज़ार के लिए उत्पादन करवाते थे।

इसकी वजह यह थी कि शहरों में शहरी दस्तकारी और व्यापारिक गिल्ड्स (उत्पादकों के संगठन) काफ़ी ताकतवर थे।

- वे अपने कारीगरों को प्रशिक्षण प्रशिक्षण देते थे।
- उत्पादकों पर नियंत्रण, प्रतिस्पर्धा और मूल्य तय करते, व्यवसाय में नए लोगों को आने से रोकते थे।
- शासकों ने भी विभिन्न गिल्ड्स को खास उत्पादों के उत्पादन और व्यापार का एकाधिकार दिया हुआ था।

➡ इस समय कॉमन्स की बाड़ाबंदी की जा रही थी। अब छोटे किसान (कॉटेज़र) और गरीब किसान आमदनी के नए स्रोत ढूँढ रहे थे।

- सौदागरों द्वारा माल पैदा करने के लिए पेशगी रक़म देने से गरीब काश्तकार और दस्तकार काम करने के लिए तैयार हो गए।

- वह काम के साथ गाँव में रहते हुए अपने छोटे-छोटे खेतों को भी सँभाल सकते थे।
- इस आदि-औद्योगिक उत्पादन से होने वाली आमदनी ने खेती के कारण सिमटती आय में बड़ा सहारा दिया।

कपड़ा उत्पादन

- इंग्लैंड के कपड़ा व्यवसायी स्टेप्लर्स से ऊन खरीदते थे और उसे सूत कातने वालों के पास पहुँचा देते थे।
- इससे जो धागा मिलता था उसे बुनकरों, फ़ुलर्ज़, और रंगसाज़ों के पास ले जाया जाता था।
- लंदन में कपड़ों के फिनिशिंग होती थी। इसके बाद निर्यातक व्यापारी कपड़े को अंतर्राष्ट्रीय बाज़ार में बेच देते थे।

Study Learning Notes

कारख़ानों का उदय

इंग्लैंड में सबसे पहले 1730 के दशक में कारख़ाने खुले लेकिन उनकी संख्या में तेज़ी 18वीं सदी के आखिर में ही आई।

- कपास (कॉटन) नए युग का पहला प्रतीक थी। इसके उत्पादन में 19वीं सदी के आखिर में भारी बढ़ोतरी हुई।
- 1760 में ब्रिटेन अपने कपास उद्योग की ज़रूरतों को पूरा करने के लिए 25 लाख पौंड कच्चे कपास का आयात करता था जो 1787 में बढ़कर 220 लाख पौंड तक पहुँच गया।
- **18वीं सदी में कई आविष्कारकों की मदद से हर चरण (कार्डिंग, ऐंठना व कताई, और लपेटने) की कुशलता बढ़ी।**
- प्रति मज़दूर उत्पादन बढ़ गया और पहले से ज़्यादा मजबूत धागों व रेशों का उत्पादन होने लगा।
- **रिचर्ड आर्कराइट द्वारा सूती कपड़ा मिल की रूपरेखा देने से मशीनों द्वारा कपड़ा उत्पादन कारखानों में होने लगा।**

जिसकी सारी प्रक्रियाएँ एक छत के नीचे और एक मालिक के हाथों में आ गई थीं। इस कारण उत्पादन प्रक्रिया पर निगरानी, गुणवत्ता का ध्यान रखना और मज़दूरों पर नज़र रखना भी संभव हो गया था। 19वीं सदी की शुरुआत में विशाल कारखाने इंग्लैंड के भूदृश्य का अभिन्न अंग बन गए थे।

औद्योगिक परिवर्तन की रफ़्तार

पहला चरण : सूती उद्योग और कपास उद्योग ब्रिटेन के सबसे फलते-फूलते उद्योग थे।

- कपास उद्योग 1840 के दशक तक सबसे बड़ा उद्योग बन चुका था। इसके बाद लोहा और स्टील उद्योग आगे निकल गए।
- 1840 के दशक से इंग्लैंड में और 1860 के दशक से उसके उपनिवेशों में रेलवे का विस्तार होने से लोहे और स्टील की ज़रूरत तेज़ी से बढ़ी।
- 1873 तक ब्रिटेन के लोहा और स्टील निर्यात का मूल्य लगभग 7.7 करोड़ पौंड (इंग्लैंड के कपास निर्यात के मूल्य से दोगुनी) हो गया था।

दूसरा चरण : 19वीं सदी के आखिर में भी औद्योगिक क्षेत्र में मज़दूरों की संख्या 20% से ज़्यादा नहीं थी। और कपड़ा उत्पादन का बड़ा हिस्सा कारखानों की जगह घरेलू इकाइयों में होता था।

तीसरा चरण : खाद्य प्रसंस्करण, निर्माण, पॉटरी, काँच के काम, चर्मशोधन, फ़र्नीचर और औज़ारों के उत्पादन जैसे बहुत सारे ग़ैर-मशीनी क्षेत्रों में तरक्क़ी होना, मुख्य रूप से साधारण और छोटे-छोटे आविष्कारों का ही परिणाम थी।

चौथा चरण : नई तकनीक महँगी होने के कारण प्रौद्योगिकीय बदलावों की गति धीमी थी। सौदागर व व्यापारी सोच समझ कर उनका इस्तेमाल करते थे। क्योंकि अकसर मशीनें खराब हो जाती थीं और उनकी मरम्मत पर काफ़ी खर्चा आता था। वे उतनी अच्छी भी नहीं थीं जितना उनके आविष्कारकों और निर्माताओं का दावा था।

https://studylearningnotes.com

19वीं सदी की शुरुआत तक पूरे इंग्लैंड में भाप के सिर्फ़ 321 इंजन थे। इनमें से 80 इंजन सूती उद्योगों में, 9 ऊन उद्योगों में और बाकी खनन, नहर निर्माण और लौह कार्यों में इस्तेमाल हो रहे थे।

- **इतिहासकार का मानना है कि 19वीं सदी के मध्य का औसत मज़दूर मशीनों पर काम करने वाला नहीं बल्कि परंपरागत कारीगर और मज़दूर ही होता था।**

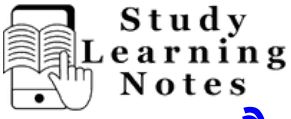

हाथ का श्रम और वाष्प शक्ति

विक्टोरिया कालीन ब्रिटेन में ग़रीब किसान और बेकार लोग कामकाज की तलाश में बड़ी संख्या में शहरों को जाते थे। इसलिए श्रमिकों की कमी या वेतन के मद में भारी लागत की कोई चिंता न होने के कारण उद्योगपतियों को मशीनों में दिलचस्पी नहीं थी।

बहुत सारे उद्योगों में श्रमिकों की माँग जाड़ों के दौरान रहती थी जैसे:—

- गैसघरों और शराबखानों में
- क्रिसमस के समय बुक बाइंडरों और प्रिंटरों को
- बंदरगाहों पर जहाज़ों की मरम्मत और साफ़-सफ़ाई व सजावट के काम में

➡ मशीनों से सिर्फ तय किस्म के उत्पाद ही बड़ी संख्या में बनाए जा सकते थे। लेकिन बाज़ार में अकसर बरीक डिज़ाइन और खास आकारों वाली चीज़ों की माँग रहती थी जो सिर्फ हाथ से तैयार किए जा सकते थे। इसलिए उद्योगपति मशीनों की बजाय मज़दूरों को ही काम पर रखना पसंद करते थे।

- **उदाहरण: ब्रिटेन में 19वीं सदी के मध्य में 500 तरह के हथौड़े और 45 तरह की कुल्हाड़ियाँ बनाने के लिए इनसानी निपुणता की ज़रूरत थी।**

➡ ब्रिटेन में उच्च वर्ग के लोग (कुलीन और पूँजीपति वर्ग) हाथों से बनी चीज़ों (परिष्कार और सुरूचि का प्रतीक) को पसंद करते थे। एक-एक करके हाथ से बनाने से चीज़ों का डिज़ाइन अच्छा होता था। मशीनों से बनने वाले उत्पादों को उपनिवेशों में निर्यात कर दिया जाता था।

https://studylearningnotes.com

- **जिन देशों में मज़दूरों की कमी होती थी वहाँ उद्योगपति मशीनों का इस्तेमाल करना ज़्यादा पसंद करते थे। जैसे: 19वीं सदी के अमेरिका में।**

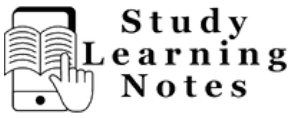

मज़दूरों की ज़िंदगी

- गाँवों में नौकरियों की खबर पहुँचते ही सैकड़ो की तादाद में लोग शहरों की तरफ चल पड़े।
- नौकरी मिलने की संभावना यारी-दोस्ती, कुनबे-कुटुंब के ज़रिए ज़्यादा रहती थी।
- जिनके पास सामाजिक संपर्क नहीं थे उन्हें रोज़गार के लिए हफ़्तों इंतज़ार करना पड़ता था।
- वे पुलों के नीचे या रैन-बसेरों में राते काटते थे। बहुत सारे निर्धन क़ानून विभाग द्वारा चलाई जाने वाले अस्थायी बसेरों में रुकते थे।
- बहुत सारे उद्योगों में मौसमी काम की वजह से कामगारों को बीच-बीच में बहुत समय खाली बैठना पड़ता था।
- कुछ लोग जाड़ों के बाद गाँवों में चले जाते थे लेकिन ज़्यादातर शहर में ही छोटा-मोटा काम ढूँढ़ने की कोशिश करते थे।

➡ 19वीं सदी की शुरुआत में वेतन सुधरने पर भी मज़दूरों की हालत बेहतर नहीं हुई। उदाहरण: नेपोलियनी युद्ध के दौरान क़ीमतें तेज़ी से बढ़ने से मज़दूरों की वास्तविक आय में भारी कमी आ गई। अब पहले जैसा वेतन मिलता था पर उतनी चीज़ें नहीं खरीद सकते थे।

➡ 19वीं सदी के मध्य में लगभग 10% शहरी आबादी बहुत ग़रीब थी। 1830 के दशक में आई आर्थिक मंदी जैसे दौरों में बेरोज़गारों की संख्या विभिन्न क्षेत्रों में 35 से 75% तक पहुँच जाती थी।

- इसलिए बेरोजगारी की आशंका के कारण मज़दूर नयी प्रौद्योगिकी से चिढ़ते थे।
- उन उद्योग में स्पिनिंग जेनी मशीनों पर हाथ से ऊन कातने वाली औरतें हमला करने लगीं।

1840 के दशक के बाद शहरों में लोगों के लिए नए रोज़गार पैदा हुए। जिसमें सड़कों को चौड़ा किया गया, नए रेलवे स्टेशन बने, रेलवे लाइनों का विस्तार किया गया, सुरंगे बनाई गईं, निकासी और सीवर व्यवस्था बिछाई गई, नदियों के तटबंध बनाए गए। परिवहन उद्योग में काम करने वालों की संख्या दोगुना और अगले 30 सालों में एक बार फिर दोगुना हो गई।

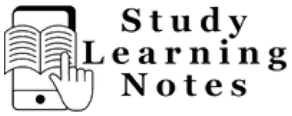

उपनिवेशों में औद्योगीकरण

भारतीय कपड़े का युग

मशीनी उद्योगों के युग से पहले अंतर्राष्ट्रीय कपड़ा बाज़ार में भारत के रेशमी और सूती उत्पादों का ही दबदबा रहता था। बहुत सारे देशों में मोटा कपास पैदा होता था लेकिन भारत में महीन किस्म का।

- आर्मीनियन और फ़ारसी सौदागर पंजाब से अफ़गानिस्तान, पूर्वी फ़ारस और मध्य एशिया के रास्ते यहाँ की चीज़ें ले जाते थे।
- महीन कपड़ों के थान ऊँटों की पीठ पर लाद कर पश्चिमोत्तर सीमा से पहाड़ी दर्रों और रेगिस्तानों के पार ले जाते थे।

➡ सूरत बंदरगाह (गुजरात) के ज़रिए भारत खाड़ी और लाल सागर के बंदरगाहों से जुड़ा हुआ था। कोरोमंडल तट पर मछलीपटनम और बंगाल में हुगली के माध्यम से भी दक्षिण-पूर्वी एशियाई बंदरगाहों के साथ खूब व्यापार चलता था।

- निर्यात व्यापार के इस नेटवर्क में बहुत सारे भारतीय व्यापारी और बैंकर सक्रिय थे।
- वे उत्पादन में पैसा लगाते और चीज़ों को ले जाकर निर्यातकों को पहुँचाते थे।
- माल भेजने वाले आपूर्ति सौदागरों के ज़रिए बंदरगाह नगर देश के भीतरी इलाकों से जुड़े हुए थे।
- ये सौदागर बुनकरों को पेशगी देकर तैयार कपड़ा खरीद कर बंदरगाहों तक पहुँचाते थे।

- बंदरगाह पर बड़े जहाज़ मालिक और निर्यात व्यापारियों के दलाल कीमत पर मोल-भाव करके आपूर्ति सौदागरों से माल खरीद लेते थे।

1750 के दशक तक भारतीय सौदागरों के नियंत्रण वाले इस नेटवर्क के टूटने के कारण:—

- यूरोपीय कंपनियों ने स्थानीय दरबारों से कई तरह की रियायतें हासिल करने के बाद व्यापार पर इज़ारेदारी अधिकार प्राप्त कर लिए।
- इससे सूरत व हुगली, दोनों पुराने बंदरगाहों के कमज़ोर पड़ने पर निर्यात में कमी आई।
- क़र्ज़े से चलने वाला व्यापार खत्म होने लगा। धीरे-धीरे स्थानीय बैंक का दिवालिया हो गए।
- 17वीं सदी के आखिर में सूरत बंदरगाह से व्यापार का कुल 1.6 करोड़ रुपए था जो 1740 के दशक तक सिर्फ 30 लाख रुपए रह गया।
- अब बंबई व कलकत्ता की स्थिति सुधर रही थी। नए बंदरगाहों के ज़रिए होने वाला व्यापार यूरोपीय कंपनियों के नियंत्रण में यूरोपीय जहाज़ों के ज़रिए होता था।
- बहुत सारे पुराने व्यापारिक घराने ढह चुके थे। बचे रहने के लिए उन्हें यूरोपीय व्यापारिक कंपनियों के नियंत्रण वाले नेटवर्क में काम करना पड़ता था।

Study Learning Notes

बुनकरों का क्या हुआ?

1760 और 1770 के दशकों में बंगाल और कर्नाटक में राजनीतिक सत्ता स्थापित करने से पहले ईस्ट इंडिया कंपनी को बुने हुए कपड़े को पाने के लिए फ़्रांसीसी, डच और पुर्तगालियों के साथ -साथ स्थानीय व्यापारियों से भी सामना करना पड़ता था।

- इस प्रकार बुनकर और आपूर्ति सौदागर खूब मोल-भाव करके सबसे ऊँची बोली लगाने वाले खरीदार को ही अपना माल बेचते थे।

- लेकिन ईस्ट इंडिया कंपनी की राजनीतिक सत्ता स्थापित हो जाने के बाद उसने प्रतिस्पर्धा खत्म करने, लागतों पर अंकुश रखने और कपास व रेशम से बनी चीज़ों के नियमित आपूर्ति सुनिश्चित करने के लिए प्रबंधन और नियंत्रण की एक नई व्यवस्था लागू कर दी।

इस काम को कई चरणों में किया गया:—

- कंपनी ने कपड़ा व्यापार में सक्रिय व्यापारियों और दलालों को खत्म करने, बुनकरों पर निगरानी रखने, माल इकट्ठा करने और कपड़ों की गुणवत्ता जाँचने के लिए **वेतनभोगी कर्मचारी (गुमाश्ता)** तैनात किए।
- कंपनी को माल बेचने वाले बुनकरों को अन्य खरीदारों के साथ कारोबार करने पर पाबंदी लगा दी गई।

➡ ऑर्डर मिलने पर बुनकरों को कच्चा माल खरीदने के लिए क़र्ज़ा दिया जाता था। क़र्ज़ा लेने वाले को अपना बनाया कपड़ा गुमाश्ता को ही देना पड़ता था।

- क़र्ज़े मिलने पर महीन कपड़े की माँग बढ़ने लगी, और ज़्यादा कमाई की आस में बुनकर पेशगी स्वीकार करने लगे।
- जिन बुनकरों के पास ज़मीन थी अब वे इस ज़मीन को भाड़े पर देकर पूरा समय बुनकरी में लगाने लगे। बच्चे व औरतें, सभी कुछ न कुछ काम करते थे।

बुनकर गाँवों में बुनकरों गुमाश्तों के बीच उत्पन्न टकराव के कारण:—

- पहले आपूर्ति सौदागर बुनकर गाँवों में ही रहते थे। वे बुनकरों की ज़रूरतों का ख्याल और संकट के समय उनकी मदद करते थे। पर नए गुमाश्ता बाहर के लोग थे जिनका गाँवों से कोई सामाजिक संबंध नहीं था।
- वे दंभपूर्ण व्यवहार करते, सिपाहियों व चपरासियों को लेकर आते और माल समय पर तैयार न होने की स्थिति में बुनकरों को मार-पीट कर व कोड़े बरसा कर सज़ा देते थे।

Study Learning Notes

- अब बुनकर न तो दाम पर मोलभाव कर सकते थे और न ही किसी और को माल बेच सकते थे।

➡ कर्नाटक बंगाल में बहुत सारे स्थानों पर बुनकरों ने गाँव छोड़कर अपने रिश्तेदारों के यहाँ दूसरे गाँव में करघा लगा लिए।

- कई स्थानों पर कंपनी और उसके अफ़सरों का विरोध करते हुए गाँव के व्यापारियों के साथ मिलकर बुनकरों ने बगावत कर दी।
- कुछ समय बाद बहुत सारे बुनकरों ने क़र्ज़ा लौटाने से मना करके करघे बंद कर दिए और खेतों में मज़दूरी करने लगे।

भारत में मैनचेस्टर का आना

Study Learning Notes

भारत के कपड़ा निर्यात में 1811-12 में सूती माल का हिस्सा 33% था जो 1850-51 में मात्र 3% रह गया था। ऐसा होने के निम्न कारण थे:—

- इंग्लैंड में कपास उद्योग विकसित होने पर उद्योगपतियों ने सरकार पर दबाव डालकर आयातित कपड़े पर आयात शुल्क लगवा दिया।
- जिससे मैनचेस्टर में बने कपड़े बाहरी प्रतिस्पर्धा के बिना इंग्लैंड में आराम से बिक सकें।
- दूसरी तरफ़ ईस्ट इंडिया कंपनी पर दबाव डाला कि ब्रिटिश कपड़ों को भारतीय बाज़ारों में भी बेचा जाए।
- 1850 तक आते-आते सूती का आयात भारतीय आयात में 31% था जो 1870 तक 50% से ऊपर चला गया।
- कम लागत पर मशीनों से बनने वाले आयातित कपास उत्पाद इतने सस्ते थे कि बुनकर उनका मुकाबला नहीं कर सकते थे।
- 1850 के दशक तक देश के ज़्यादातर बुनकर इलाकों में गिरावट और बेकारी आ गई।
- 1860 के दशक में अमेरिकी गृहयुद्ध शुरू होने पर अमेरिका से कपास की आमद बंद होने से ब्रिटेन भारत से कच्चा माल मँगाने लगा।

- भारत से कच्चे कपास के निर्यात में वृद्धि के कारण कीमत आसमान छूने लगी।
- भारतीय बुनकारों को मनमानी कीमत पर कच्ची कपास खरीदनी पड़ती थी। ऐसे में बुनकरी के सहारे पेट पालना संभव नहीं था।

फ़ैक्ट्रियों का आना

- **मुंबई में पहली कपड़ा मिल 1854 में लगी। और 1862 तक वहाँ ऐसी चार मिलें काम कर रही थीं।**
- **बंगाल में देश की पहली जूट मिल 1855 में और दूसरी 1862 में चालू हुई।**
- **1861 में अहमदाबाद की पहली कपड़ा मिल चालू हुई। और 1864 में कानपुर में एल्गिन मिल खुली।**
- **1874 में मद्रास में भी पहली कताई और बुनाई मिल खुल गई।**

प्रारंभिक उद्यमी

18वीं सदी के आखिर से ही अंग्रेज़ भारतीय अफ़ीम को चीन निर्यात करके बदले में चाय खरीद कर इंग्लैंड बेचते थे। इस व्यापार में बहुत सारे भारतीय कारोबारी सहायक के रूप में पहुँच गए। उन्होंने पैसा उपलब्ध कराके, आपूर्ति सुनिश्चित करके और माल को जहाज़ों द्वारा भिजवाकर व्यापार से खूब पैसा कमाया।

- **जैसे: द्वारकानाथ टैगोर (बंगाल)** ने 1830-1840 के दशकों में 6 संयुक्त उद्यम कंपनियाँ लगा ली थीं। पर 1840 के दशक में आए व्यापक व्यावसायिक संकटों में उद्यम बैठ गए थे।
- **बंबई में डिनशॉ पेटिट और जमशेदजी नुसरवानजी टाटा** जैसे पारसियों ने चीन को निर्यात करके और इंग्लैंड को कच्ची कपास निर्यात करके खूब पैसा कमाया था।
- 1917 में कलकत्ता में देश की पहली जूट मिल लगाने वाले मारवाड़ी व्यवसायी **सेठ हुकुमचंद** ने भी चीन के साथ व्यापार किया था। यही काम **जी.डी. बिड़ला के पिता और दादा** ने किया।

➡ मद्रास के कुछ सौदागर बर्मा से व्यापार करते थे जबकि कुछ मध्य-पूर्व व पूर्वी अफ़्रीका से। कुछ वाणिज्यिक समूह भारत में ही व्यवसाय करते थे। वे एक जगह से दूसरी जगह माल ले जाते, सूद पर पैसा चलाते, एक शहर से दूसरे शहर पैसा पहुँचाते और व्यापारियों को पैसा देते थे। उद्योगों में निवेश के अवसर पर उनमें से बहुतों ने फ़ैक्ट्रियाँ लगा लीं।

➡ औपनिवेशिकों ने भारतीय व्यवसायियों को अपना तैयार माल यूरोप में बेचने से रोक दिया। अब वे मुख्य रूप से कच्चे माल और अनाज (कच्ची कपास, अफ़ीम, गेहूँ और नील) का ही निर्यात कर सकते थे।

➡ **पहले विश्वयुद्ध तक यूरोपीय प्रबंधकीय एजेंसियाँ भारतीय उद्योगों के विशाल क्षेत्र का नियंत्रण करती थीं। इनमें बर्ड हीगलर्स एंड कंपनी, एंड्रयू यूल, और जार्डीन स्किनर एंड कंपनी सबसे बड़ी कंपनियाँ थीं।** ये एजेंसियाँ पूँजी जुटाती, संयुक्त उद्यम कंपनियाँ लगाती, और उनका प्रबंधन सँभालती थीं।

- ज़्यादातर मामलों में भारतीय फाइनेंसर पूँजी उपलब्ध कराते थे जबकि निवेश व्यवसाय से संबंधित फ़ैसले यूरोपीय एजेंसियाँ लेती थीं।
- यूरोपीय व्यापारियों-उद्योगपतियों के अपने वाणिज्यिक परिसंघ में भारतीय व्यवसायियों को शामिल नहीं करते थे।

Study Learning Notes

मज़दूर कहाँ से आए?

- किसानों-कारीगरों को गाँव में काम न मिलने पर औद्योगिक केंद्रों की तरफ़ जाने लगे।
- 1911 में बंबई के सूती कपड़ा उद्योग में 50% से ज़्यादा मज़दूर रत्नागिरी जिले से आए थे।
- कानपुर की मिलों में काम करने वाले ज़्यादातर कानपुर जिले के गाँवों से आते थे।
- मिल मज़दूर बीच-बीच में फ़सलों की कटाई व त्यौहारों के समय गाँव जाते रहते थे।
- नए कामों की खबर फैलने पर लोग दूर-दूर जैसे संयुक्त प्रांत से बंबई के कपड़ा मिलों और कलकत्ता के जूट मिलों में काम करने के लिए पहुँच रहे थे।

➡ मिलों की संख्या बढ़ने पर मज़दूरों की माँग भी बढ़ रही थी लेकिन रोज़गार पाने वालों की संख्या रोज़गारों के मुक़ाबले हमेशा ज़्यादा रहती थी। उद्योगपति मज़दूरों की भर्ती जॉबर द्वारा करवाते थे। जो कोई पुराना और विश्वस्त कर्मचारी होता था।

- वे अपने गाँव के लोगों को काम के भरोसे के साथ लाकर शहर में जमने और मुसीबत में पैसे से मदद करते थे।
- इस प्रकार जॉबर ताक़तवर और मज़बूत व्यक्ति बनने के बाद लोगों से मदद के बदले पैसे व तोहफ़ों की माँग करने लगे और मज़दूरों की ज़िंदगी को नियंत्रित करने लगे।

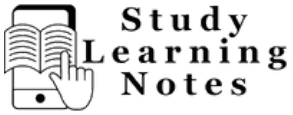

औद्योगिक विकास का अनूठापन

भारत में यूरोपीय प्रबंधकीय एजेंसियों ने औपनिवेशिक सरकार से सस्ती कीमत पर ज़मीन लेकर चाय व कॉफ़ी के बागान लगाए और खनन, नील व जूट व्यवसाय में पैसे का निवेश किया।

➡ भारतीय व्यवसायियों ने मैनचेस्टर की बनी चीज़ों से प्रतिस्पर्धा न करके सूती मिलों में कपड़े की बजाय मोटे सूती धागे ही बनाए, जिनका इस्तेमाल भारत के हथकरघा बुनकर करते थे या उन्हें चीन को निर्यात कर दिया जाता था।

- स्वदेशी आंदोलन में राष्ट्रवादियों ने लोगों को विदेशी कपड़े के बहिष्कार के लिए प्रेरित किया।
- औद्योगिक समूह ने अपने सामूहिक हितों की रक्षा के लिए, आयात शुल्क बढ़ाने तथा अन्य रियायतें देने के लिए सरकार पर दबाव डाला।
- 1906 के बाद चीन भेजने वाले भारतीय धागे के निर्यात में कमी आ गई।
- फलस्वरूप, भारत के उद्योगपति धागे की बजाय कपड़ा बनाया लगे। 1900 से 1912 के भारत में सूती कपड़े का उत्पादन दोगुना हो गया।

➡ पहले विश्वयुद्ध में ब्रिटिश कारख़ाने युद्ध संबंधी उत्पादन में व्यस्त थे। इसलिए भारत में मैनचेस्टर के माल का आयात कम होने पर भारतीय बाज़ारों को देशी बाज़ार मिल गया।

https://studylearningnotes.com

- युद्ध लंबा खिंचने पर भारतीय कारखानों में भी फ़ौज के लिए जूट की बोरियाँ, फ़ौजियों के लिए वर्दी के कपड़े, टेंट और चमड़े के जूते, घोड़े व खच्चर की जीन तथा बहुत सारे अन्य सामान बनने लगे।
- नए कारखाने लगाए गए और पुराने कारखाने कई पालियों में चलने लगे।
- नए मज़दूरों को काम पर रखा गया। हरेक को पहले से ज़्यादा समय तक काम करना पड़ा।
- युद्ध के बाद भारतीय बाज़ार में मैनचेस्टर को पहले वाली हैसियत नहीं मिल पाई।
- आधुनिकीकरण न कर पाने और अमेरिका, जर्मनी व जापान के मुकाबले कमजोर पड़ जाने के कारण ब्रिटेन की अर्थव्यवस्था चरमरा गई थी।

Study Learning Notes

लघु उद्योगों की बहुताय

अर्थव्यवस्था में विशाल उद्योगों का हिस्सा (1911 में 67%—बंगाल और मुंबई में) बहुत छोटा था। बाकी पूरे देश में छोटे स्तर के उत्पादन का ही दबदबा रहा।

पंजीकृत फ़ैक्ट्रियाँ 1911 में 5% और 1931 में 10% थी। बाकी मज़दूर गली-मोहल्लों में स्थित छोटी-छोटी वर्कशॉप और घरेलू इकाइयों में काम करते थे।

➡ 20वीं सदी के दूसरे दशक में फ़्लाई शटल वाले करघों का इस्तेमाल करने से कामगारों की उत्पादन क्षमता बढ़ी, उत्पादन तेज़ हुआ और श्रम की माँग में कमी आई।

https://studylearningnotes.com

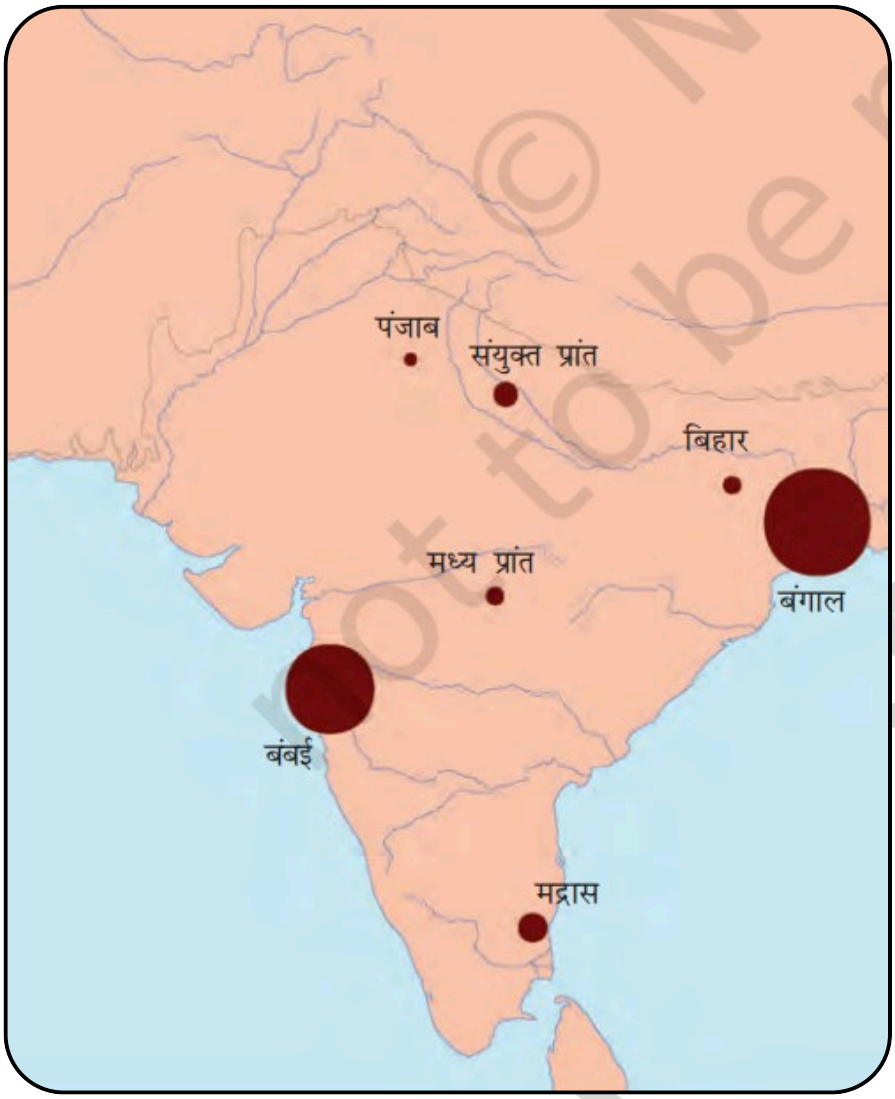

भारत में बड़े पैमाने के उद्योगों वाले इलाक़े, 1931

Study Learning Notes

- 1941 तक भारत में 35% से ज़्यादा हथकरघों में फ़्लाई शटल लगे होते थे।
- त्रावणकोर, मद्रास, मैसूर, कोचीन, बंगाल आदि क्षेत्रों में ऐसे हथकरगघे 70-80% तक थे।
- मिलों के साथ प्रतिस्पर्धा का मुक़ाबला करने में कुछ बुनकर औरों से बेहतर स्थिति में थे।
- कुछ मोटा कपड़ा तो कुछ महीन किस्म के कपड़े बुनते थे। मोटे कपड़े को मुख्य रूप से गरीबी ही खरीदते थे जिसकी माँग में भारी उतार-चढ़ाव आता था।
- बेहतर किस्म के कपड़े की माँग खाते-पीते तबक़े में ज़्यादा थी। उसमें कम उतार-चढ़ाव आते थे।
- 20वीं सदी में उत्पादन बढ़ाने के लिए बुनकरों को कठिन परिश्रम पूरे परिवार के साथ दिन-रात मिलकर करना पड़ता था

https://studylearningnotes.com

वस्तुओं के लिए बाज़ार

औद्योगीकरण की शुरुआत से ही विज्ञापनों ने विभिन्न उत्पादों के बाज़ार को फैलाने में और एक नई उपभोक्ता संस्कृति रचने में अपनी भूमिका निभाई है।

- मैनचेस्टर के उद्योगपति भारत में कपड़ा बेचते समय कपड़े के बंडलों पर लेबल लगा देते थे जिससे खरीदारों को कंपनी का नाम, चीज़ों की गुणवत्ता व उत्पादन की जगह का पता चल जाता था।
- लेबलों पर शब्द और अक्षर के अलावा सुंदर तस्वीरें भी बनी होती थीं।

➡ इन लेबलों पर भारतीय देवी-देवताओं की तस्वीरें छापने के बहाने निर्माता दिखाना चाहता था कि ईश्वर भी चाहता है कि लोग उस चीज़ को खरीदें और विदेशों में बनी चीज़ भी भारतीयों को जानी-पहचानी सी लगें।

- 19वीं सदी के आखिर में निर्माता अपने उत्पादों को बेचने के लिए कैलेंडर छपवाने लगे। जिसे अनपढ़ लोग भी समझ सकते थे। जो चाय की दुकानों, दफ़्तरों व मध्यवर्गीय घरों में लटके रहते थे।
- देवताओं की तस्वीरों की तरह महत्वपूर्ण व्यक्तियों, सम्राटों व नवाबों की तस्वीरें भी विज्ञापनों व कैलेंडरों में खूब इस्तेमाल होती थीं। इनका संदेश यह होता था कि यदि आप इनका सम्मान करते हैं तो इस उत्पाद का भी सम्मान करें।

भारतीय निर्माताओं द्वारा बनाए गए विज्ञापनों में राष्ट्रवादी संदेश साफ़ दिखाई देता था। इसका आशय यह था कि यदि आप राष्ट्र की परवाह करते हैं तो उन चीज़ों को खरीदें जिन्हें भारतीयों ने बनाया है।

Study Learning Notes